# अज्ञेय के लेखो में भारतीयता

**डॉ0 अमलेन्दु कुमार अंजन**

अतिथि व्याख्याता

हिन्दी विभाग

शंकर शाह विक्रमशिला महाविद्यालय, कहलगाँव, भागलपुर

अज्ञेय की भारतीयता के संदर्भ में यदि हम कहें कि उनके साहित्य में भारतीयता ही भारतीयता नजर आती है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। यह भले ही कहा जाता है कि अज्ञेय पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव अधिक है। वे मार्क्सवाद और फ्रायडवाद से प्रभावित थे, किन्तु वे भारत की भूमि पर खड़े होकर ही उसकी ओर झाँकते थे, यह भी सत्य है और यह कहा है कि ''हाँ, कोई यह पूछे कि पहला पत्रकार या संवाददाता कौन था तो जरूर सोचने की बात है, क्योंकि मेरी धारणा तो यही है कि पहला संवाददाता ही बात की समूची ऐतिहासिक उलझनों का मूल रहा। यों तो इतने से ही कुछ अनुमान हो जाना चाहिए कि पहला संवाददाता कौन होना चाहिए ?[1]

यहाँ अज्ञेय जी यह अवश्य स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि सम्पूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों के मूल में भारत की भूमिका अहम् है, किन्तु वे सीधे–सीधे न कहकर घुमा–फिरा कर कहते है। इसी घुमाव को उन्होंने 'हौवा' और आदम की कथा को अपने लेख में सर्वप्रथम उद्धृत कर उसके बाद नचिकेता, यमराज, प्रियंवदा और शकुन्तला आदि की कथा का उद्धरण दिया है–

''यूनानियों में भी महाभारत जैसा युद्ध था, पर उसके पास व्यास ऋषि कहाँ थे? और न संजय। उनका दुर्भाग्य था कि उन्होंने भी एक स्त्री संवाददाता नियुक्त की थी जिसके संवादों पर व्यास के समस्थानीय बुढ़उ 'होमर' तो क्या स्वयं उसी के यूनानी भी विश्वास नहीं करते थे। .... हाँ, नौसिकेया स्त्री थी, यह जरूर है, यह भी कहा जा सकता है कि इसीलिए उसका विश्वास नहीं किया गया जबकि नचिकेता ऋषि हो गये। उस समय कोई अखिल यूनानी नारी–सम्मेलन नहीं था जो इस पक्षपात का विरोध करके घोषित कर देता कि वह किसी पुरूष संवाददाता का विश्वास नहीं करेगा। उस काल के पक्षपात का इलाज तो अब नहीं हो सकता, पर अगर अखिल भारतीय महिला सम्मेलन में यह प्रस्ताव रखा जाय कि आज के प्रत्येक भारतीय नारी को यमपूरी भेजकर यमराज से साक्षात्कार करके नचिकेता का समपदत्व प्राप्त करने का अवसर दिया जाय तो कदाचित् वह इसके लिए सरकार से सिफारिश भी करने को राजी हो जाए। इस प्रस्ताव में खूबी यह है कि नयी रोशनी की महिलाएँ तो इसका अनुमोदन करेंगी ही, क्योंकि यह तो समानाधिकार की माँग है, पुराने विचारवालों को भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए। क्योंकि सावित्री भी तो इस प्रस्ताव का पूरा अनुमोदन करने के लिए तैयार है।''[2]

इसी लेख (पहला रिर्पोटर) में भारतीयता के संदर्भ में अज्ञेय जी का दृष्टिकोण इस प्रकार स्पष्ट हुआ है, द्रष्टव्य हैं – ''मैंने आरंभ में ही कहा है कि पहला संवाददाता ही बाद की समूची ऐतिहासिक उलझनों का मूल रहा है। वह पहला संवाददाता कौन था, माफ कीजिए कौन थी। आदम और हौवा की परम्परा तो काफी नहीं है क्योंकि बाइवल के वंशानुक्रम से हिसाब लगाएँ तो पहला संवाद कुल चार–छः हजार वर्ष पुराना कहा जाता है। मनु की परम्परा कुछ ज्यादा ठीक मालूम होती है और नहीं तो इसलिए की उसका काल–निर्धारण जरा मुश्किल है। यानी संवाद की पड़ताल के लिए संवाद से आगे कुछ नहीं है, अर्थात् संवाददाता स्वतः प्रमाण है। मनु तो मनु थे। लिखते–लिखाते तो क्या होंगे, पहले संवाद का प्रचार 'इड़ा' ने ही किया होगा। यह भी संभव है कि उसे 'इंड़ा' नाम ही इसलिए दिया गया हो। इड़ा

(इरा) सरस्वती के नाम में सौ बातें उठ खड़ी होती है। उस इरा को बार–बार प्रमाण। यों इरा की वन्दना आरंभ होनी चाहिए। मैं अन्त में इसलिए कर रहा हूँ कि मेरी बात रह जाए।''[3]

भारतीय समाज में आदिकाल से ही अन्धविश्वास का बोलबाला रहा है। आज भी पढ़े–लिखे लोगों में अन्धविश्वास कूट–कूट कर भरा हुआ है। इसका कारण चाहे जो भी रहा हो, उस पर हम बहस करना नहीं चाहेंगे। ज्योतिष से हाथ दिखाया या फिर पत्थरों की अंगुठी से अपनी तकदीर बनाने की बात सोचना, निरा भारतीयपन है। संभव है अज्ञेय ने इसी ओर अपना लक्ष्य करके 'दिल्ली देखा कि आगरा' नामक लेख में एक हवलदार और पॉमिस्ट जो एक ही ट्रेन से सफर कर रहे थे, की बाते सुनकर लेखक व्यंग्य के माध्यम से भारतीयता को स्पष्ट करना चाहा है। भारत में विदेशों की अपेक्षा रेलगाड़ी में सफर का मजा ही कुछ और होता है। 'दिल्ली देखा कि आगरा' लेख में अज्ञेय जी ने कुछ निराले ढंग से भारतीय रेलयात्रा का वर्णन कर अपनी भारतीयता को स्पष्ट किया है – ''तब किसी दयालु दक्षिणी ने सुझाया कि दिल्ली में काम हो तो मेरठ या फरीदाबाद में रहकर आते–जाते रहना किफायत का रास्ता हो सकता है। अपने राम न तो रेडियो सम्मेलन में आये थे, न समिति के सदस्य थे, दिल्ली में थोड़ा काम था पर उसके साथ समय की कड़ी पाबन्दी न थी इसलिए मेरठ से दूसरे–तीसरे मेरठ की यात्रा कुछ भयावह नहीं लगी। लोकल गाड़ियाँ तो बहुत है, देर से चलती–पहुँचती है तो क्या हुआ। कभी चेन–वेन खींच जाती है और राह में घंटों लग जाते है, तो दूसरी तरफ यह भी है कि भीड़ में अधिकतर लोग टिकट नहीं लेते या ले पाते और बेजगह गाड़ी रूक जाने से यह आराम भी हो जाता है कि उतरकर अपने रास्ते चल दिये–न किसी से टिकट पूछा न किसी ने दिखाया। आखिर 'जियो और जीने दो' का आकर्षण जितना ऐसे दमघोंटू सफर के मुसाफिर को होता है, उतना ही तो सबकी घृणा और अवहेलना की बर्छियों से छिदते हुए रेलवे टीटियों को होता होगा। हमने कहा टीटियों को बिहार का प्रतिष्ठित 'टिकट चेकर बाबू' दिल्ली पहुँचते–पहुँचते' टी–टी' हो जाता है; क्या नाम की यह घिसाई काम की पिसाई की नाप नहीं है?

मेरठ–दिल्ली–मेरठ की रेलयात्रा हमने किफायत की लाचारी से चुनी थी, तफरीह के शौक से नहीं, पर दो एक बार की अन्ध–घिसाई के बाद ही समझ में आ गया कि क्यों लोगों को इसकी लत लग जाती है। किरानी बाबू इसके लिए घर से दो घंटे पहले चल दने को तैयार हो जाते हैं और कॉलेज के विद्यार्थी टिटकारियों लगाते हुए बाहर लटकते रहने के लिए बार–बार फेल होते जाना भी मंजूर कर लेते है, क्योंकि ये सुख केवल विद्यार्थीगिरी के सुख हैं। दक्षिण की बसों की ठेलमढेल में खड़े–खड़े उचके खने का मजा भी हमारा अपरिचित नहीं है, पर सच कहें, इस दिल्ली–गाजियाबाद–दिल्ली–मेरठ की लोकलयात्रा पर सौ–सौ जम्बोजेट न्यौछावर है – दिल्ली से मेरठ तक की पूरी यात्रा न भी हो, चाहे केवल मोतीबाग से मिन्टोब्रिज या साहिबावाद से सेवानगर तक आना मिल जाये–'राज तिहूँ पर को तजि डारों।''[4]

आप मानते नहीं? ऐसी यात्रा की एक ही घटना सुन लीजिए बुजुर्गों के लिए बानगी ही काफी है।

''शाहदरा–साहिबावाद के बीच कहीं तक पहुँचे थे; भीड़ जैसे–जैसे अंग मोड़–तोड़कर डिब्बे में अँट गयी थी और सफर की मुसीबत के बारे में मानो एक सर्वसम्मत धारणा बना लेने के बाद लोग आपस का वैर–भाव भुलाकर लाचारियों को मजा लेने के मुड में आ चुके थे। बात–चीत चल निकली थी, हँसी–मजाक भी हो रहा था, जो बोल नहीं रहे थे वह सुनने का ही रस ले रहे थे। हम भी सुनने वालों में थे। अगर श्रव्य के कच्चे धागों के सहारे भी हम मन–ही–मन नाटक रचते चल रहे थे तो इसलिए नहीं कि हम भरतमुनि को झूठा ठहरा रहे है, सिर्फ इसलिए कि जो सुन रहे थे वह इतना मजेदार था कि कहानी अपने–आप बनना चल रहा था।''[5]

मै अपना पूर्वाग्रह आप पर क्यों लाधूँ आप स्वयं सुन लीजिए।

''बात ज्योतिष से शुरू हुई थी। कुंडली देखकर भूत–भविष्य बता देते हैं। वह क्या सच होता है? अब साहब ससच–झूठ का क्या पता लगे है और फिर चार बातों में एक सच निकल आवे तो साब रौब में आ जावें और तीन जो झूठ हो उन्हें याद कौन रखे? .... इससे हाथ देखने की बात निकली। एक मुसाफिर अपने को माहिर बता चुके थे तुरन्त परीक्षा की बात इसलिए बड़ी सफाई से टाल चुके थे कि इतनी भीड़ में हाथ कोई कैसे देखे, उसके लिए तो पूरी शान्ति चाहिए और विद्यालय में तो बारीक रेखा देखने के लिए बिजली के कैसे–लेम्प लगे रहते हैं – असल में कारी लकीरे तो बारीक ही होती है, मोटी रेखा से थोड़े ही असल महत्व की बात पता लगती है। आयु रेखा देखकर किसी को बता दो कि वह बीस बरस जीवेगा या कि अगले बरस मर जाएगा तो इसके सच–झूठ का क्या पता लगे–वह तो एक बरस या बीस बरस बाद ही जाना जाएबा न। अब कोई यह बतावे कि तुम्हारी बीबी झगरड़ालू होगी या तुम्हारे बाप ने मूँगफली की चोरबाजारी से पाँच हजार रूपया बनाया होगा, तो इसकी पड़ताल भी हो सके – और यह तो बारीक रेखाओं से ही पता चलता है जिन्हें पहचानने में घंटों लग जाय।''[6]

किसी ने कहा – ''पर यह कोई मान लेगा तब न। हाँ, भला आदमी अपनी भद्द कौन करवाये – लेकिन रेखा से क्या ऐसी बात का भी पता लग जाता है? तब तो यह बड़ी विद्या है साहब।''[7]

एक भारी–सी आवाज सुनायी दी, पॉमिस्ट साब ठीक कहते हैं– मैं तो पूरा कायल हूँ। मेरी तो आजमायी हुई है। सब की आँखें वक्त की ओर मुड़ी। उसकी वर्दी और भुजा का बिल्ला देखकर किसी ने कहा, सुनो भाई, हवलदार साहब की बात सुनो। हाँ तो हवलदार साहब, आप अपने .... की बात सुनाइए – अपने जंग के दौरान कई मुल्कों की सैर की होगी।

हवलदार ने कुछ सकुचाने का अभिनय करते हुए कहा – नहीं, कई तो क्या, हाँ, बर्ता फ्रंट पै था... पर मैं कह यह रहा था कि मुझे एक पॉमिस्ट ने जो बताया वह सारे गैर माकूल हालत के बावजूद ऐसा सच हुआ कि हैरत होती है। भरती होने के पहले मैं पेशौर की तरफ एक छावनी में सिविलियन क्लर्क था, तब की बात हैं।

मजेदार कहानी की संभावना से सभी उत्सुक होकर चुप हो गये थे। श्रोता–मण्डली काबू में है, यह देखकर हवालदार साहब अश्वस्त होकर आपबीती सुनाने लगे। कहानी का सार यों था : कहानी आगे बढ़े, इससे पहले हम इस तथ्य को और स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि अज्ञेय की भारतीयता में ठेठ भारतीयपन का चित्र खीचा गया है। व्यक्ति का ऐसा भोलापन आखिर भारत को छोड़कर कहाँ मिलेगा? वह हवालदार यह भी नहीं जानता कि उसके आगे के कथन से अन्य लोगों के ऊपर क्या प्रभाव पड़ेगा, उसका चरित्र किस रूप में आँका जाएगा, इसका अन्दाजा उसे नहीं। इतना भोलापन है भारतीयों का इस प्रकार अज्ञेय ने इस लेख में भारतीय हवालदार की कहानी को सुनाकर उसके व्यक्तित्व को चिन्हित अवश्य किया है–

''सिविलियन जिन्दगी में वह एक छावनी के स्टोर क्लर्क थे। तनख्वाह तो क्लर्क की जो होती है सो होती है, पर छावनी का स्टोर क्लर्क होने के नाते ऊपर की अच्छी आमदनी हो जाती थी। शादी भी हो गयी थी। भगवान की दया से सबकुछ था। एक पॉमिस्ट ने बताया कि चार बच्चे होंगे – लड़के, सो बीबी खुश थी। पर बरस गुजरने लगे और कुछ भी नहीं हुआ फिर तीन बार औलादे हुई भी तो लड़कियाँ जो कोई भी चार दिन से ज्यादा जिन्दा नहीं रही – एक तो पैदा होने के दो घंटे बाद मर गयी। एक और पॉमिस्ट को दिखाया – उसने कहा लड़के होंगे तीन तो जरूर, शायद चौथा भी लड़का होगा। और चारों जियेंगे .... बीबी को बताया, पर उसे तसल्ली नहीं हुई। फिर एक दिन उसने कहा – तुम जो रिश्वत लेते हो न, तभी औलाद नहीं होती, या बचती नहीं। मेरी बात मानो तो रिश्वत लेना बंद कर दो। हो न हो इसी पाप के कारण यह सब होता है। बीबी ने कसम उठवाकर छोड़ी। पर उसने जब तौबा कर ली

तो फिर उसे निवाहा भी। रिश्वत लेना उसी दिन से बन्द कर दिया, पर शायद कुछ नहीं हुआ। इसी बीच जंग छिड़ गयी तो भरती हो जाने में तरक्की दिखी बावर्दी हवालदार क्लर्क होकर तबादले पर गये और फिर वहाँ से फ्रंट भेज दिये गये।''[8]

इस प्रकार चलती रेलगाड़ी में उस हवालदार ने सभी यात्रियों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया था। कुछ लोग रिश्वत के बारे में जानना चाहते थे तो कुछ पॉमिस्टों की बातों की सच्चाई। उस भीड़ में से एक आदमी ने पूछ ही दिया कि हवालदार साहब, वहाँ ऊपर की आमदनी का खूब मौका रहा होगा।

हवालदार पॉमिस्टों की बातों को सिद्ध कर यह बताना चाहता था कि उनकी भविष्यवाणी सत्य हुई परन्तु वह यह नहीं जानता था कि उस सत्य में कहाँ असत्य छिपा है। इसलिए वह अधिक उत्साहित होकर और इशारे से श्रोता गण को शान्त कराते हुए बोला मौके तो बहुत थे, पर उन्होंने कसम उठा ली सो उठा ली थी। पर बात रिश्वत की नहीं पॉमिस्ट्री की है न। यह कहकर वह फिर अपनी दिलचस्प कथा सुनाने लगे –

''तो सहब वहाँ डिपो के लिए रोज रसद की डिलीवरी लेनी पड़ती थी। तरह–तरह के लोग आते थे और वह तो सब ट्राइवल इलाका का है न वहाँ मर्द कम औरते ही ज्यादा आती थी माल पहुँचाने के लिए साग–सब्जी हो, दूध–फल हो, अण्डा–मूर्गी हो तो अक्सर चावल वही लाती थीं। ऐसे क्या बताए साहब अब ऐसी जिन्दगी में यह कोई अनहोनी बात तो नहीं, वहीं एक औरत से आशनाई हो गयी ..... पहले तो कभी–कभी आना जाना होता था, फिर कुछ ऐसा मौका बन गया कि ज्यादातर उसी के घर रहना होता था – अपने क्वार्टर में रात कभी–कभी ही गुजारनी पड़ती थी यों देखते–देखते ही दो बरस बीत गये – फिर छुट्टी पर तीन हप्ते घर जाना हुआ उससे नतीजा कुछ नहीं निकला। लौटकर फिर रवैया चालू हो गया।''[9]

ट्रेन के सभी यात्री हवालदार की आपबीती कथा में रूचि रहे थे। सबको समय गुजारने का अच्छा मौका मिल गया था। अभी गंतव्य का स्टेशन नहीं आया था। इसलिए सभी एकाग्र होकर कथा सुन रहे थे। एकाएक हवालदार के चेहरे पर शर्म की झलक दिखाई पड़ने लगी। वह आगे की कथा सुनाने में हिचक रहा था। कथा कुछ भारतीय मर्यादा के विरूद्ध जैसी थी – इसका उसे भी अनुभव हो रहा था। किन्तु अन्धविश्वास उसे पॉमिस्ट की भविष्यवाणी को सिद्ध कराने के लिए बाध्य भी कर रहा था। वह शरमायी सी मुस्कुराहट लेकर फिर अपनी आपबीती को आगे बढ़ाते हुए बोला –

''साहब, दो बरस और वहीं गुजर गये और आपको क्या बताऊँ, मेरी जिन्दगी के शायद सबसे सुख के दिन रहे वो.... जिस औरत से मेरी आशनाई थी, वह शादीशुदा थी, पर उसका खाविन्द कलकत्ते रहता था, मेरे रहते तो लौटकर नहीं आया, और मैं भला क्यों उसकी खबर पूछता। पर साहब, और इसी को कहते हैं तकदीर का जोर मारना।.... और उस औरत से मुझे औलाद नसीब हुई, चार बरस में तीन बच्चे–तीनों लड़के...।''[10]

डिब्बे में थोड़ी चुप्पी छायी रही। फिर एकाएक तीन–चार कहकहे एकाएक सुनने को मिली, और दो–तीन आवाजे भी; वाह हवालदार साहब! टापको तो बीबी की बात खुब फली, और पॉमिस्टों की भी!.... खुदा जब देता है तो ऐसे देता हैं..... है साब तकदीर भी कोई चीज! होनी कभी नहीं टलती।

हवालदार और कुछ कहना चाहता था। उसने हाथ का इशारा कर सब यात्रियों कों रोकते हुए कहा– ''आप सबकी दुआ से अब मेरी चार औलादें है। चारों जिन्दा है। तीन का हवाला तो मैंने बता ही दिया। वार के बाद घर

लौटकर अपनी बीबी से चौथी पैदा की – भी लड़का भगवान की दया से वह भी जिंदा है। रिश्वत मैंने फिर कभी नहीं ली।''[11]

निरा भोला स्वाभव वाला भारतीय है हवालदार। वह यह नहीं जानता कि पाप–पुण्य क्या है। उसपर लोगों की व्यंग्यात्मक बधाइयों की बौछार होने लगा किसी ने बीबी की बात की दाद दी, किसी ने पॉमिस्ट की भविष्यवाणी की, किसी ने भाग्य के बल की सभी ने हवालदार की खुशनसीबी की....।

यहाँ 'पॉमिस्ट' भी भारतीयता का एक प्रतीक–पक्ष है। वह पॉमिस्ट की बात का पूरजोर समर्थन करता हुआ उसकी बात गलत हो जाये–बशर्ते कि पढ़ने वाला ठीक पढ़े। या कोई इमकान की बात सच हो–मगर होकर रही। इस प्रकार अंधविश्वास की पराकाष्ठा अज्ञेय साहित्य में निहित भारतियता को घोषित करता है।

अज्ञेय के सृजन और चिन्तन की आधुनिकता इस गहन अर्थ में भारतीयता का पर्याय है कि वह भारतीयता पर कदम–कदम पर तर्क करती है और नचिकेता भाव से जुझती है। अपने प्रसिद्ध निबन्ध भारतीयता में अज्ञेय ने गहन विचार–विश्लेषण के बाद माना है कि ''भारत की आत्मा सनातन है। भारतीयता केवल भौगोलिक परिवृत्ति की छाप नहीं, एक विशिष्ट आध्यात्मिक गुण है, जो भारतीयता को सरे संसार से पृथक करता है। भारतीय मानवीयता का निचोड़ है, उसकी हृदय मणि है उसका शिरसावतंस है। उसके नाक का बेसर है।''[12]

**संदर्भ सूची :**


1. संपादक डॉ0 कन्हैयालाल नन्दन, अज्ञेय रचना संचयन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पहला संस्करण वर्ष 2010, पृ0सं0 258
2. वहीं, पृ0सं0 260–61
3. वहीं, पृ0सं0 252
4. वहीं, पृ0सं0 252–53
5. वहीं, पृ0सं0 253
6. वहीं, पृ0सं0 253
7. वहीं, पृ0सं0 253
8. वहीं, पृ0सं0 255
9. वहीं, पृ0सं0 255
10. वहीं, पृ0सं0 256
11. वहीं, पृ0सं0 256
12. अज्ञेय, आत्मनेपद, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन तीसरा संस्करण वर्ष 2009, पृ0सं0 76